



एक दंगे की भविष्यवाणी

कल्पना शर्मा

9 जनवरी, 1993 की सुबह मुंबई शहर के इतिहास में सब से अन्धकारमय दिन में बदल गयी थी। मुंबई का आकाश लगभग मानसूननुमा अन्धेरे से घिरा था। एका-एक शहर में सैकड़ों जगहें धुआं उगलती नजर आईं। आग पूरे वातावरण में फैल गई थी। जिन अंगारों से यह आग फैली वे बहुत पहले से सुलगना शुरू हो गए थे। यह उन लोगों को शायद इसलिए दिखाई नहीं दिया क्योंकि वे लोग सच्चाई को देखना-पहचानना ही नहीं चाहते थे। दिसम्बर, 1992 और जनवरी, 1993 में हुए दंगों ने महानगर के चीथड़े उड़ा दिए थे और आर्थिक संदर्भ में घटी घटनाओं को मद्देनजर रखते हुए इस स्थिति को समझने के लिए तीन दशक पीछे लौटना पड़ेगा। उन सब स्थितियों से वाकिफ रहते हुए आज हम समझ सकते हैं कि शहर में घटी इन ऐतिहासिक और सामाजिक घटनाओं ने शहर को सांप्रदायिक दंगों के लिए तैयार कर दिया था। 6 दिसंबर, 1992 को अयोध्या में बाबरी मस्जिद को सैकड़ों कार सेवकों ने गिरा कर ढा दिया था। इसके कुछ ही घण्टों के

बाद मुंबई शहर में जब दंगे शुरू हुए तो प्रशासन और पुलिस स्थिति का सामना करने को तैयार न थी।

बाबरी मस्जिद के धंस के प्रति शहर में मुसलमान समुदाय की प्रतिक्रिया से लोग हैरान रह गए थे कि उन्हें लगा था मस्जिद और अयोध्या विवाद से उनका कोई लेना-देना नहीं है। वे यह भी समझ बैठे थे कि यह घटना एक 'दूरदराज उत्तर भारत' में घटी घटना है। यह बेहद गलत अनुमान था। हुआ यह कि लोग समुदाय और धर्म की बिना पर बंट गए। 1980 के दशक से मुंबई की राजनीति सम्प्रदायवादी हो रही थी। चुनाव की राजनीति में शिवसेना के प्रवेश और सक्रिय होने के बाद ऐसा हुआ था। यह सोचना कि इन सब घटनाओं का लोगों की सोच-समझ पर कोई असर नहीं होगा, एकदम भोलापन ही माना जाएगा।

बदलती हुई पहचान

मुंबई के समकालीन इतिहास में दंगे विभाजक साबित हुए। मुंबई का सार्वभौमिक-कॉस्मोपोलिटन स्वरूप दंगों की वजह से नष्ट हो गया। इसी सार्वभौमिकता से अजी सहनशीलता

मुंबई का एक सकारात्मक गुण माना जाता था। लेकिन सच्चाई कुछ और ही थी। द्वीपनगर जैसे कुछ भागों में बेशक सार्वभौमिकता बनी रही पर गत दो दशकों में उत्तर में विकसित हो रहे, नए-नए बसे उपनगरों में लोग अलग-थलग होने लगे थे।

बड़ी महत्वपूर्ण बात है कि सबसे ज्यादा दंगा-फसाद इन नई बसी बस्तियों में हुआ था। द्वीप नगर में आज भी या तो मुसलमान बहुतायतवाले इलाके हैं या फिर वे जगहें भी हैं जहाँ हिन्दुओं की आबादी ज्यादा है। बेशक कोलाबा और मालाबार हिल क्षेत्रों में मिले-जुले समुदाय के लोग बसते हैं। बेशक एक ही गली के उस-इस पार रहने वाले उत्तरी उपनगरों के निवासियों में उस सहनशीलता की कमी थी जो पुराने क्षेत्रों में बरकरार थी।

मुंबई में विकसित हो रहे क्षेत्र उत्तर में औद्योगिक क्षेत्र थाने, पनवेल तक फैले थे। यही अगला बड़ा शहरी केन्द्र माना जाता है। दूसरा विकसित हो रहा क्षेत्र उत्तर की ओर बढ़ती हुई पश्चिमी टट-रेखा है। यहाँ पर दलदलों को बिल्डर सुधार के बहाने आवासीय क्षेत्रों में बदलते रहे हैं। ये क्षेत्र वाइल्ड वेस्ट की तरह थे। नागरिक अधिकारी-वर्ग का हुकुमनामा यहाँ लागू न था। किसी तरह की कोई योजना न थी। बहुत से भवनों को अधिकारियों से प्रमाण-पत्र या मलजल व्यवस्था तक के कनेक्शन तक न थे। मुंबई में मकानों की कमी के चलते हजारों लोग मजबूरन इन अधूरे बने घरों में रहने आ गए थे।

अधिकांश मध्यवर्गीय सहकारी आवासीय सोसाइटियां इन नए उपनगरों में एक ही समुदाय के लोगों को पंजीकृत करती थीं। कभी-कभार इसके विपरीत भी पंजीकरण होता था। उदाहरण के लिए भीड़-भाड़ वाले मध्य मुंबई के डोंगरी, पाइधोनी या नागपाड़ा में रहने वाले मुसलमानों ने उत्तर-पूर्व उपनगर मुम्बरा जैसे उत्तर-पूर्वी उपनगर में अपनी बचत का पूंजी निवेश कर-

दिया। ऐसे परिवारों को मुसलमान बिल्डर विशेष छूट देते थे। इसी तरह, हिन्दू परिवारों ने मध्य मुंबई छोड़ कर घाटकोपर और भाईन्दर में रहना शुरू कर दिया।

उत्तरी उपनगरों में बेशक मध्य-वर्गीय लोगों के लिए मकान बन गए लेकिन यहाँ झुग्गी-झोपड़ियों में रहने वाले भी बस गए। आखिर वहाँ इतनी ज्यादा जगह थी। इन झुग्गी-झोपड़ियों में रहने के लिए लोग मध्य मुंबई, राज्य या शहर के दूसरे हिस्सों से आए थे। ये सब विस्थापित परिवार थे। उन्होंने शहरी जीवन की दिक्कतों को झेला। किसी तरह की बिरादरी या समाज बनाने का समय नहीं था। इनमें से ज्यादातर झुग्गी-झोपड़ियों को सरकारी मान्यता नहीं दी गई थी। वहाँ रह रहे लोगों को मूलभूत सुविधाएं देने की जिम्मेदारी सरकार की न थी। पानी जैसी मूल सुविधा की गैरहाजिरी में हिंसात्मक झगड़े होते। पुरानी कॉलोनियों में ऐसा कम होता था। द्वीपनगर की पुरानी झुग्गी-झोपड़ियों का एक विशेष चरित्र था। उनका सरकार और स्थानीय राजनीति से संबंध का लम्बे समय का अनुभव था। आखिर कई राजनेताओं के झुग्गी-झोपड़ियों में अपने अड्डे थे। नई झुग्गी झोपड़ी क्षेत्रों में आबादी में कोई आपसी संबंध न था। स्थानीय ‘दादा’ या गुंडे ने समुदाय के लिए मूल सुविधाएं दिलवाने के लिए जोर-जबरदस्ती के तौर-तरीके अपना कर अपना शासन स्थापित कर लिया। अपराध से अपने रिश्ते के बाबजूद ऐसे लोग राजनैतिक दलों के चहेते उम्मीदवार बन गए। इस तरह बाकी क्षेत्रों के मुकाबले इन झुग्गी-झोपड़ियों में अपराध और राजनीति का खुले आम रिश्ता बन गया।

इस तरह के समुदाय लड़ने-झगड़ने के लिए आदर्श माने जाते हैं। शक को खुली लड़ाई में बदलते वक्त नहीं लगता है। ढांचागत स्तर पर भी ये लड़ाई-झगड़े के लिए आदर्श माने जाते हैं। कम ऊँचाई वाले बहुत से ढाँचे, लड़ाई के लिए आदर्श थे। घर पर ही बनाए गए पेट्रोल बमों को, इन

दांचों को ढाल बनाकर तिरछी छतों से फेंकने के लिए युवकों द्वारा पूरे विश्व में प्रसन्न किया जाता है।

सामुदायिक तनाव का एक कारण था - ट्रान्सिट कैम्प - ये ऐसे बैरक नुमा ढाँचे होते हैं जिन्हें महाराष्ट्र हाऊसिंग बोर्ड मुंबई की अलग-अलग जगहों में, सेन्ट्रल मुंबई या शहर के दूसरे हिस्सों से विस्थापित हुए परिवारों के थोड़े समय तक रहने के लिए बनाता है। इन परिवारों को अपना घर इसलिए छोड़ा पड़ा क्योंकि उनकी बिल्डिंग की मरम्मत हो रही थी। सच तो यह है कि इन लोगों को इन कैम्पों में बरसों रहना पड़ता है।

इन ट्रान्सिट कैम्पों में इन्हें एक ही कमरा दिया जाता है। शौचालय तो सबके लिए सिर्फ एक होता है। बेशक पानी का नल अलग-अलग होता है। परिवार अपने पड़ोसियों को नहीं जानते। हाँ, वे अपने पड़ोसियों से सम्बंध बनाए रखते हैं। वहाँ जितने भी लोग रहते हैं वे सब लुट-पिटकर कर आए हुए होते हैं। दस- दस साल तक एक ही जगह पर रहते जाने के बावजूद वे एक दूसरे को पहचानते नहीं। कारण सिर्फ एक ही है - वे सब अपने- अपने पुराने इलाकों में लौटने के इन्तजार में हैं। वे नए सिरे से संयोगवश बने पड़ोसियों से नई दोस्ती नहीं करना चाहते हैं।

जमीन सम्बंधी नीतियां एकदम विवेकहीन और असंगत हैं। इनका लाभ सिर्फ बहुत अमीर लोगों को होता है। मुंबई में झुग्गी-झोपड़ियों की संख्या बढ़ने का यही कारण है। बड़ी-बड़ी बिल्डिंगों और अस्थाई बसेरों में रहने वालों के बीच फूट और अलगाव इन्हीं कारणों से पनपा है। पटरियों पर रहने वालों और बहुमंजिली इमारतों में रहने वालों में यह समस्या और भी संगीन है। यह भावना तब और भी विकट रूप ले लेती है जब पटरियों पर रहने वाले और बहुमंजिली इमारतों में रहने वाले अलग-अलग समुदाय के होते हैं।

बदलती अर्थव्यवस्था

मुंबई की बदलती हुई शक्तियों-सूरत ने शहर का

आर्थिक नक्शा भी बदला है। इसका शहर पर स्थायी असर पड़ा है। एक जमाना था जब मुंबई को पूर्व का मैनचेस्टर माना जाता था। शहर के क्षितिज पर दर्जनों कपड़ा मिलों से निकलता धुआं छाया रहता था। 1970 में यह सब बदलने लगा। मिल मालिक मशीनों के आधुनिकीकरण में पूँजी निवेश नहीं करना चाहते थे। परिणामस्वरूप मिलें 'बीमार' रहने लगीं। इसी कारणवश शहर की आर्थिक शक्तियों सूरत बदलने लगीं। धीरे-धीरे संगठित क्षेत्र ने पूँजीनिवेश करना बन्द कर दिया। उत्पादन को अनौपचारिक और असंगठित क्षेत्र की ओर ले जाना शुरू कर दिया। मिल मालिकों ने कपड़ा उद्योग का उत्पादन कार्य भिवंडी और सूरत में बिजली के करघों में करना शुरू कर दिया। इंजीनियरिंग इकाइयों ने भी छोटी इकाइयों से उत्पादन करवाना शुरू कर दिया था।

शहरों में उत्पादन कम होने के परिणामस्वरूप शहर के मजदूर संघों की ताकत भी कम होने लगी। बरसों से कपड़ा मिलों का मजदूर संघ सबसे ज्यादा ताकतवर था। 1982 की मशहूर कपड़ा मिल हड़ताल के बाद शहर में यूनियनबाजी की मौत हो गई थी। 18 महीने तक चली हड़ताल तब खत्म हुई थी जब मिल मालिकों ने शुकने के बजाए अपनी मिलों को बन्द करने का फैसला कर लिया। इस बीच हजारों कारीगर गरीबी के कगार पर पहुँच चुके थे। शहर में और कोई विकल्प न बचने के कारण बहुत से मजदूर अपने-अपने गाँव लौट गए थे। हड़ताल के फलस्वरूप एक महत्वपूर्ण मोड़ आ चुका था।

1980 के दशक में और 1990 के शुरुवाती दौर में ज्यादातर पूँजीनिवेश सर्विस क्षेत्र में होने लगा। शहर की सीमा के अन्दर उत्पादन बहुत कम होने लगा था। उद्योग मुंबई के उत्तरी और पूर्वी भाग में लगने लगा था। मुंबई के लोगों के रिहायशी हालात वैसे ही दिन पर दिन बिगड़ रहे थे- मुंबई की आधी आबादी झुग्गी-झोपड़ियों में रहती है - इसी के फलस्वरूप स्थिर और कुशल महानगर एक बारूदी

पाउडर के ऐसे पीपे में बदल गया जो कभी भी सांग्रहायिक हिंसा में फट सकता था।

बदलती हुई राजनीति

मुंबई को प्रभावित करने वाले बदलावों में महाराष्ट्र की राजनीति सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। 1960 में गुजरात के साथ संबंध टूटने के बाद बदलाव आने लगा था। महाराष्ट्र राज्य के गठन के बाद मुंबई का अब सिर्फ एक मुंबई का ही आधार था। शहर की राजनीति में 1970 तक मजदूर संघों की महत्वपूर्ण भूमिका थी। कांग्रेस का मजदूर संघ इंडियन नेशनल ट्रेड यूनियन कांग्रेस कपड़ा क्षेत्र पर हावी था। रेल्वे, यातायात, सफाई व्यवस्था के कार्यकर्त्ता गैर-कांग्रेसी मजदूर संघों के साथ थे। इनमें प्रमुख थे समाजवादी और साम्यवादी मजदूर संघ।

महाराष्ट्र राज्य के गठन के कुल सात साल बाद 1967 के चुनावों में मजदूर संघों की बढ़ती हुई ताकत का पता लग गया था। इस चुनाव में दो मजदूर संघों ने कांग्रेस के प्रत्याशियों को हरा दिया था। मुंबई प्रदेश कांग्रेस कमेटी के एस.के.पाटिल को जार्ज फर्नार्डिस ने हराया था। तभी उन्हें यह उपनाम दिया गया था 'जार्ज द जायंट किलर'। उद्योगपति हरीश महीन्द्रा को कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ इंडिया के एस.ए.डांगे ने हराया था।

शिवसेना का जन्म 1966 में इन मजदूर संघों के उभरने और शक्ति प्रदर्शन के ही फलस्वरूप हुआ था। दो कांग्रेसी नेताओं के हारने के बाद सरकार को लगा था कि इन संघों से बचने के लिए शिवसेना की मदद लेनी चाहिए। बेशक शिवसेना का नजरिया और सरोकार संकीर्ण और सीमित था - उनका सरोकार था 'महाराष्ट्रियों के लिए महाराष्ट्र'। - तत्कालीन मुख्यमंत्री वसन्तराव नाइक ने जानबूझ कर वामपंथी मजदूर संघों को कुचलने के लिए शिवसेना को प्रोत्साहित किया। इस तरह सरकारी मान्यता, समर्थन मिल जाने पर बाल ठाकरे का नवगठित राजनैतिक दल शक्तिशाली बनता गया। हालांकि, मुंबई की राजनीति पर

शिवसेना का प्रभाव बहुत बाद में स्पष्ट हुआ। 1967 के चुनावों के बाद कांग्रेस विरोधी भावनाएं बढ़ती गईं। 1977 के चुनावों में कांग्रेस मुंबई की छह की छह संसदीय सीटें हार गई थीं। इसका कारण था पूरे देश में उठी आपातकाल विरोधी लहर। 1980 के चुनावों के दौरान स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया। इंदिरा गांधी की हत्या के बाद 1984 में कांग्रेस की सीमित वापसी हुई थी।

स्वतंत्रता संग्राम के दौरान कांग्रेस की ऐतिहासिक भूमिका के कारण पहले मुंबई में कांग्रेस का प्रभुत्व था। मुंबई में कांग्रेस की बिगड़ती हालत को मुंबई प्रदेश कांग्रेस समिति की बिगड़ी हालत से जोड़ा जाता है। एस.के.पाटिल की हार ने दल में बड़े-बड़े नेताओं का प्रभुत्व खत्म कर दिया था। 1969 में कांग्रेस पार्टी विभाजित हो गई। इसके बाद प्रदेश कांग्रेस समिति की हालत और भी खराब हो गई। इस मौके का फायदा उठाया ऐसे राजनेताओं ने जिनका शक्ति गढ़ मुंबई में न था। वह पश्चिमी महाराष्ट्र के चीनी-समृद्ध भौतरी प्रदेश में था।

शिवसेना का उदय

मुंबई में घटी घटनाओं पर नजर डालने - मात्र से साफ हो जाता है कि मजदूर संघों पर वामपंथियों के नियंत्रण में आई गिरावट के फलस्वरूप ही शिवसेना का उदय हुआ। औपचारिक क्षेत्र में पूजीनिवेश के बन्द हो जाने के फलस्वरूप ही कम उम्र, योग्य युवकों के सामने बेरोजगारी मुँह बाए खड़ी हो गई। यह एक संयोग ही है कि इनमें से ज्यादातर महाराष्ट्र के थे। दूसरे समुदायों के यहाँ स्वरोजगार की पुरानी परम्परा थी। इसी आधार पर शिवसेना का निर्माण हुआ।

उनके प्रयासों को राजनैतिक बल मिला 1985 के नागरिक चुनावों में। उन्होंने मुंबई नगर निगम का नियंत्रण कांग्रेस से छीन लिया। इनकी विजय से स्पष्ट हो गया कि इनकी शक्ति बढ़ रही है। दूसरे दलों में फूट पड़ चुकी है। मतदाताओं ने हमेशा सोचा था कि नगर निगम के चुनावों में हमेशा कांग्रेस

ही जीतेगी। वह इस बदलाव से उदासीन हो गए। 1985-90 के दौरान शिवसेना ने शहर पर अपनी पकड़ दृढ़ कर ली थी। शिवसेना ने अनेक शाखाएं खोल ली थीं और बहुत से युवाओं को सदस्य बना लिया था। जब मुंबई में दंगे शुरू हुए तब शिवसेना के सदस्यों की संख्या 3,00,000 थी।

इन पाँच बरसों के दौरान शिवसेना ने अपना दायरा बढ़ा लिया था और वह पूरे राज्य में फैल गई थी। 1989 के संसदीय और राज्य के चुनावों में शिवसेना ने भारतीय जनता पार्टी से गठबंधन कर लिया था। हालांकि राज्य में कांग्रेस का शासन था फिर भी भाजपा और शिवसेना एक बड़े विरोधी दल के रूप में उभरे थे।

मुंबई की राजनीति और अर्थव्यवस्था में आए बदलाव से एक और नुकसान हुआ। मुंबई के शहरी जीवन में अपराध बढ़ गया। मुंबई में सोने, चांदी और बिजली के उपकरणों की तस्करी को तो पारम्परिक स्तर पर लगभग स्वीकार कर लिया गया था। मुंबई के समुदायों का तो यह धन्धा ही था। प्रमुख तस्कर हाजी मस्तान और यूसुफ पटेल तो सुपरिचित नाम थे। 11 अप्रैल, 1993 के टाइम्स ऑफ इंडिया में राजदीप सारदेसाई का लेख छपा था - 'रिलक्टेंट डॉन' - उस में हाजी मस्तान ने कहा था "भारत की तट-रेखा इतनी लम्बी चौड़ी है, यहाँ तस्करी हमेशा फले फूलेगी"। हाजी मस्तान ने समझाया था कि 1980 में मादक पदार्थ तस्करी के माध्यम से बिकने शुरू हुए। उसने कहा "दुर्भाग्यवश इसमें बहुत लाभ है। दस पैसे के आप 100 रुपए बना सकते हैं।"

इन्हीं दिनों मुंबई और शिकागो में तुलना होने लगी थी। पुलिस और अपराधियों के बीच गोलीबारी की खबरें अखबारों में छपने लगी थीं। मादक पदार्थों के अलावा हथियारों की तस्करी होना तो स्वाभाविक ही था। 1980 के मध्य में इन गिरेहों की ताकत को खुले आम स्वीकृति मिल गई। राजनैतिक दलों ने तो जाने-पहचाने अपराधियों को राजनैतिक पदों के लिए मनोनीत करना शुरू कर दिया था। 1985 के नगर

निगम चुनावों में शिवसेना की जीत हुई थी। मुंबई नगर निगम के चुनावों में शिवसेना ने जेल में बन्द किम बहादुर थापा को मनोनीत किया था। उसने जेल की कोठरी में बैठे-बैठे चुनाव जीता भी था। एक साल बाद असेम्बली चुनावों के लिए कांग्रेस ने दो-दो अपराधियों को मनोनीत किया था - ये थे वसई-विरार के हितेन्द्र ठाकुर और उल्हासनगर के पण्ठ कलानी। दोनों जीत भी गए थे। 1990 में जब शिवसेना का मुंबई नगर निगम पर नियंत्रण खत्म हो गया तो सब दलों ने 40 अपराधियों को मनोनीत किया था।

अपराध और राजनीति

1991 में राज्य के सबसे शक्तिशाली राजनेता शरद पवार के बाद नव नियुक्त मुख्यमंत्री सुधाकर नाईक ने पहली बार अपराध जगत की गला घोंटू पकड़ को तोड़ने की कोशिश की थी। पवार रक्षा मंत्री का पद संभालने दिल्ली चले गए थे। नाईक ने सबसे पहले हितेन्द्र ठाकुर के भाई भाई ठाकुर और कुछ महीनों बाद राजनेता भाई और कलानी को टाडा के तहत बन्दी बनाया था। नाईक का अपना स्वतंत्र राजनैतिक आधार नहीं था। ऐसी उम्मीद नहीं की जा रही थी कि वे इस तरह की निर्णायिक कार्रवाई करेंगे। यह ऐसा फैसला था जो राजनैतिक मालिकों को नाराज कर सकता था।

तब तक किसी भी मुख्यमंत्री ने शिवसेना और आराधियों के राजनैतिक गठबन्धन को तोड़ने की कोशिश न की थी। ऐसे मसले पर पवार का रवैया काफी हद तक उदार था। उनके विरोधियों का आरोप था कि अपराध जगत से पवार की नजदीकियां थीं और शिवसेना से सौदा किया था कि शहर के हालात ऐसे रखे जाएं कि देखने में लगे कि स्थिति शांतिमय है। हालांकि अगर ऐसा कोई समझौता था तो नाईक ने उसे तोड़ दिया था। नाईक ने नवम्बर, 1992 में कैबिनेट में फेरबदल करते हुए जिन सदस्यों को निष्कासित कर दिया वे सब पवार के समर्थक थे। खुले आम अपने ही समर्थकों से यों सम्बंध तोड़कर उन्होंने आने वाली घटनाओं का संकेत दे

दिया था। पार्टी में फूट का यह पहला संकेत था। नाईक का अन्त नजर आने लगा था।

मंत्रिमंडल में फेर-बदल के एक महीने बाद ही दिसम्बर, 1992 को दंगे शुरू हो गए थे। शुरू-शुरू में नाईक ने पहले महीनों की तरह अपराधी-राजनेताओं पर सख्ती बरती थी। लेकिन इस बार मुंबई के नागरिकों ने उनकी आलोचना की। दंगों में मारे गए अधिकांश लोग मुसलमान थे। इन पर पुलिस की गोलियां लगी थीं। जब तक दंगों का दूसरा दौर शुरू हुआ नाईक पर राजनैतिक दबाव बढ़ने लगा था। इस दबाव में बढ़ोत्तरी की वजह थी पवार की मुंबई में मौजूदगी। वे दिल्ली से मुंबई आ कर शहर में अस्थाई रूप से कम्प कर रहे थे। इसके फलस्वरूप मुख्यमंत्री का प्रभुत्व कम होने लगा। पवार और उनके समर्थक नाईक के इस स्वतंत्र रवैये से नाराज थे। शहर की बिगड़ती हालत से उन्हें पवार की ताकत और नाईक की कमजोरियों को उजागर करने का मौका मिल गया। नगर के चिन्तित लोग पहले तो हैरान हुए थे। यह वह समय था जब नाईक को समर्थन की जरूरत थी। आश्वासन के स्थान पर नाईक को दल के भीतर गुटबाजी की राजनीति का सामना करना पड़ा था।

शायद नाईक समझ गए थे कि हवा का रुख विपरीत दिशा में हो गया है। अपने ही दल में हो रहे विरोध को झेलना मुश्किल हो गया था। पवार जैसे लोगों की ताकत का सामना वे नहीं कर पाए थे। दो दफा भड़के दंगों में राज्य सरकार का विपरीत व्यवहार समझ में आता है। पवार का मानना था कि दंगे बाबरी मस्जिद के ढह जाने के कारण हुए थे। नाईक अपराध जगत को दोषी मान रहे थे। वे ही उनकी सरकार को बदनाम करना चाह रहे थे। कारण जो भी रहा हो मुंबई में आए राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक बदलावों को भी हिन्दू-मुसलमान शत्रुता के लिए जिम्मेदार माना जाता है। ऐसा न होता तो दंगे इतने समय तक इतना विकराल रूप न ले पाते।

6 दिसंबर, 1992 को युद्धप्रिय लड़ाकू हिन्दू हथियारों सहित तीन मंजिला बाबरी मस्जिद पर चढ़ गए थे। कछ मिनटों में उन्होंने उसे मलबे में बदल दिया था। चन्द मिनटों में ही यह समाचार पूरे भारत में मीडिया सक्रियता की मेहरबानी से रेडियो-टूर्दरशन पर प्रसारित हो गया था। मुंबई में मुसलमान अधिसंख्यक इलाकों में इस समाचार से लोगों को बड़ा सदमा पहुंचा था। दक्षिण मुंबई स्थित मुहम्मद अली रोड - जहाँ एक सेफ्टीपिन से ले कर रेफ्रिजरेटर तक सब कुछ खरीदा जा सकता है - इस समाचार के आते ही युवाओं सहित सैकड़ों नाराज लोग सड़कों पर उतर आए थे। पुलिस सोते हुए पकड़ी गई थी। प्रतिक्रिया स्वरूप भीड़ पर गोली चलाई गई थी। नजदीक के एक क्षेत्र में उसी रात एक पुलिस कान्स्टेबल की छुरा घोंप कर हत्या कर दी गई थी।

पहला दौर

यह खून-खराबे की पहली घटना थी। यह दौर लगभग एक हफ्ते तक जारी रहा। बेशक यह टकराव कुछ ही क्षेत्रों तक सीमित रहा। ज्यादातर वारदातेपुलिस और प्रदर्शनकारियों के बीच घटी थीं। पुलिस ने प्रदर्शनकारियों और बदले में मुसलमानों ने पुलिस चौकियों पर हमले किए थे। बेशक कुछेक क्षेत्रों में हिंसा ने सांप्रदायिक दंगों का रूप ले लिया था। उदाहरण के लिए धारावी झुग्गी-झोपड़ी क्षेत्र के शिवसेना समर्थकों ने 6 दिसंबर को विजय जलूस निकाला था। जाहिर है, प्रतिक्रिया स्वरूप टकराव हुए। दो दिन तक जारी दंगों में 33 लोग मारे गए थे।

7 दिसंबर की सुबह को मुसलमानों और पुलिस के बीच रात- भर जारी रहे दंगे की खबर सब ओर फैल गई थी। मुहम्मद अली रोड के आस पास स्थित मंदिरों और पुलिस चौकियों पर हमले हुए थे। पुलिस ने तंग और भीड़ भरी गलियों में गोलीबारी की थी। जाहिर है अनेक लोग घायल हुए और मारे गए। ऐसे कई बेकसूर लोग भी घायल हुए या मारे गए जो वहाँ से गुजर रहे थे या अपनी खिड़की में खड़े थे। चन्द घण्टों में 43 लोग मारे गए थे और 94 घायल हो गए थे।

इसी क्षेत्र में स्थित मुंबई के सबसे बड़े जे.जे.अस्पताल में धायलों को लाया गया था। जाहिर है उन पर काम का बोझ बढ़ गया था।

शाम तक सेना को बुलाना पड़ गया था। मध्य और दक्षिण मुंबई के आठ पुलिस स्टेशनों के क्षेत्रों में कर्फ्यू लगा दिया गया था।

इन सब घटनाओं के चलते उत्तरी उपनगर में एक हजार मुसलमानों की एक भीड़ ने एक पुलिस चौकी पर हमला बोल दिया था। एक मंदिर के बाहर खड़े पुलिस के दो सुरक्षा कर्मियों की हत्या कर दी गई थी। अगले तीन दिनों में बदले में किए गए हमलों में 58 लोग मारे गए थे। बाबरी मस्जिद के गिराए जाने के बाद 7 दिसंबर को मुस्लिम लीग ने 'बंद' की घोषणा कर दी थी। यह बंद 8 दिसंबर को आयोजित किया गया। इस घोषणा के होते ही वाम पंथी और कांग्रेस दलों ने भी 'बंद' की घोषणा कर दी थी। लेकिन इन बंदों के बावजूद जोगेश्वरी और कुर्ला के उत्तरी उपनगरों तक फैल चुके दंगे-टकराव होते रहे। उस शाम तक मरनेवालों की संख्या 94 बताई गई थी। यह तो सरकारी स्तर पर दी गई जानकारी के आधार पर बताया गया। गैर-सरकारी सूत्रों के मुताबिक यह संख्या 130 या इससे भी ज्यादा थी। पांच और इलाकों में कर्फ्यू लगा दिया गया था।

दंगों के पहले दौर में 9 दिसंबर को सबसे बुरा दिन माना जाएगा। उस दिन शिवसेना और भारतीय जनता पार्टी ने 'बंद' की घोषणा की थी। अयोध्या में उनके नेताओं को बन्दी बना लिया गया था। यह उनकी ओर से अपने समुदाय को इशारा था - हल्ला बोल दो। उन्होंने मस्जिदों और मुसलमानों के संस्थानों पर हमले किए थे। एक क्षेत्र में शिवसेना ने एक घोषणा करते हुए नोटिस लगा दिए थे - जो भी हमें किसी मुसलमान का घर बताएगा उसे 50,000 रुपए इनाम दिया जाएगा।

उस दिन सबसे भयानक घटना घाटकोपर के उत्तर-पूर्व

में बसे उपनगर के असल्फा गाँव में घटी थी। हिन्दू दंगाइयों ने अंधाखुंब आगजनी की वारदातों को अंजाम दिया था। लकड़ी और कूड़ा-घर के गोदामों को इसलिए आग लगा दी गई थी। व्यापक उनके मालिक मुसलमान थे। उस क्षेत्र में 300 ज्वोपड़ियों को आग लगा दी गई थी। लोगों ने बड़ी मुश्किल से अपने जान-माल को बचाया था। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक मरनेवालों की संख्या 136 रही। इनमें से अधिकांश मुसलमान थे। 90% की मौत पुलिस द्वारा चलाई गई गोलीबारी से हुई थी।

10 दिसंबर को थके, हारे लोगों ने अपने-अपने काम पर जाने की कोशिश की। उपनगरीय रेलगाड़ियों ने हजारों लोगों को उनके काम तक पहुँचाया। पर दोपहर तक लोग बाग अपने-अपने घरों को लैट गए थे। शहर में अफवाहें फैल गई थीं कि शिवसेना के प्रमुख को हिरासत में ले लिया गया है। पुलिस ने इन अफवाहें को झुठलाने की कोशिश तो की पर गत तीन दिनों की घटनाओं के मद्देनजर किसी को पुलिस के आश्वासनों पर यकीन न था।

शुक्रवार 11 दिसंबर को पूरी मुंबई के सब नागरिक अपनी-अपनी सांस रोके हुए थे। मुसलमान हमेशा की तरह नमाज पढ़ना चाहते थे। कानून के तहत यह सम्भव न था। इसके लिए पांच लोगों से ज्यादा लोगों का एक जगह इकट्ठा होना जरूरी था। शुक्रवार होने के नाते पुलिस ने कर्फ्यू में ढील देने का फैसला किया था। धारावी के अलावा सब जगह पर नमाज शांतिपूर्वक सम्पन्न हुई थी। धारावी में इस छूट पर हिन्दुओं ने एतराज किया था। इस बात पर भड़के फसाद में एक की मौत हुई और अनेक जख्मी हुए थे।

11 दिसंबर एक और कारण से भी महत्वपूर्ण दिन रहा। उस दिन शिवसेना को दंगे करवाने का एक और बहाना मिल गया। शनिवार को शिवसेना ने कर्फ्यू में छूट की मांग की थी। वे शिवसेना और भारतीय जनता पार्टी का गढ़ माने जाने वाले क्षेत्र में स्थित गोल देवल में 'महाआरती' करना चाहते थे पर वहाँ मुसलमानों की भी

आबादी ज्यादा है। बस इसी 'महाआरती' के बहाने छूट की मांग की गई थी।

हिन्दुओं के रीति रिवाजों के मुताबिक महाआरती हर रोज नहीं होती है। जब होती भी है तब इसका आयोजन मंदिर के बाहर सड़कों पर नहीं होता। फिर भी शिवसेना ने इसे एक मुद्दा बना लिया था। मस्जिद इतनी छोटी होती है कि शुक्रवार के नमाज के लिए नमाजियों को सड़क पर बैठना पड़ता है। शिवसेना का तर्क था कि इस मांग के पूरा होने पर अल्प संख्यकों को संतुष्ट करने की नीति का अन्त हो जाएगा और सड़क पर हिन्दुओं का कब्जा हो पाएगा। बेशक वह महा आरती निर्विघ्न सम्पन्न हो गई थी पर उसके बाद घटी घटनाओं के लिए मंच उसी दिन बन गया था।

13 दिसंबर को दिन का कर्प्यू हटा दिया गया था। ऐसा लगा था कि सब कुछ ठीक हो गया है। बुरा वक्त टल गया है। अगले चार दिनों में ऐसा लगा था कि तनाव धीरे-धीरे कम हो रहा है। लोग अपनी सामान्य जीवन शैली में लौट रहे हैं। 17 दिसंबर से 4 जनवरी तक दंगों की कोई वारदात नहीं हुई थी। फिर भी शहर अंदर ही अंदर उबल रहा था। कहीं-कहीं आगजनी और छुरे घोंपने की वारदातें हुई थीं। 2 जनवरी को धारावी में एक बार फिर से दंगा हुआ था। दिसंबर में हुई वारदातों के मुकाबले यह बहुत मामूली वारदात थी। इसलिए इसे नजरअन्दाज किया गया।

शहर के महत्वपूर्ण मंदिरों में शिवसेना द्वारा आयोजित महाआरतियों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया था। 6 जनवरी तक शिवसेना ने 33 ऐसे आयोजन कर लिए थे। इन महा आरतियों ने सिर्फ शिवसेना के सदस्यों को ही नहीं बल्कि अन्य हिन्दुओं को भी उत्तेजित किया था। इससे जुड़े दंगे फसाद का सन्देश मुसलमान अल्प संख्यकों तक पहुंच गया था।

दूसरा दौर

पाँच जनवरी की सुबह दक्षिण मुंबई में एक मुसलमान-अधिसंख्यक आबादी वाले डोंगरी में दो मथाड़ी कार्यकर्ताओं

की छुरा भौंक कर हत्या कर दी गई थी। ये दोनों बन्दरगाह में जहाजों से सामान उतारने और रखने का काम करते थे। इस हमले के कारण का पता नहीं लग सका था। क्या यूनियन इसके पीछे था? कोई आपसी होड़ थी या फिर सांप्रदायिक मामला था। वारदात एक मुसलमान अधिसंख्यक आबादी वाली जगह में हुई थी। इसलिए मान लिया गया कि इन दो हिन्दुओं को सांप्रदायिक मुद्दों को लेकर मारा गया था। अगले दिन जब खबर फैल गई तो बड़ी संख्या में दलबल सहित, अस्त्र, शस्त्र लेकर मथाड़ी कार्यकर्ता वहाँ पहुंच गए। धारावी में हिन्दुओं ने तलबारों और रम्मों से मुसलमानों पर हमला बोल दिया। बीसियों मकानों, दुकानों और फैक्ट्रियों को आग लगा दी गई। कई गोदामों में लूट-पाट की गई।

अगली सुबह टैक्सी चालकों को पकड़-पकड़ कर गाड़ियों से बाहर निकाला गया था। अगर वह मुसलमान निकला तो उसकी टैक्सी को आग के हवाले कर दिया गया था। कई मामलों में टैक्सी ड्राइवर की हत्या भी की गई। मुसलमान बहुसंख्यक क्षेत्रों में हिन्दू टैक्सी चालकों की भी हत्या कर दी गई थी। पर सामान्यतया धायल होने वाले या मारे जाने वालों में ज्यादा संख्या मुसलमानों की थी।

दूसरे दौर में मोड़ तब आया जब 8 जनवरी को सुबह सबरे उत्तर पूर्व मुंबई जोगेश्वरी पूर्व की झाँगी झोपड़ी की गांधी चाल के एक हिन्दू परिवार के घर को आग लगा दी गई। उस मकान में तीस साल से रह रहे एक दंपत्ति की मौत हो गई। इसके अलावा उस आग में जलने वाले दूसरे लोग थे राजाराम और सुलोचना बाने, कमला बाई बांतलु और उनकी 16 साल की बेटी लक्ष्मी, 20 वर्षीय अपंग मीना नरकर और बंदना कोंडालकर। बंदना के दो बच्चे बच गए थे।

बाने परिवार इस झाँगी झोपड़ी क्षेत्र के बहुत पुराने निवासी थे। बाने एक पेन्ट फैक्टरी में काम करता था। वह शिवसेना का समर्थक था। हालांकि वह पार्टी का सक्रिय कार्यकर्ता नहीं था। 1973 के सांप्रदायिक दंगों में उन से

कहीं और जा कर रहने का कहा गया था। उन्होंने इन्कार कर दिया था। 1990-91 के सांप्रदायिक दंगों में एक बार फिर बाने परिवार को कहीं और चले जाने का प्रस्ताव रखा गया था। बाने को इसमें कोई तुक नहीं नजर आया था। बेशक दोनों समुदायों के बीच आपसी बातचीत तक बढ़ हो चुकी थी।

8 जनवरी की बारदात की योजना दो रात पहले बना ली गई थी। 6 जनवरी को एक नजदीक के मंदिर में शिवसेना ने एक विशाल महाआरती का आयोजन किया था। आरती के बाद आरती में भाग लेने वालों ने एक मुसलमान की बेकरी और अनेक मुसलमानों के घरों को आग लगा दी। अगली रात साढ़े नौ बजे के बाद एक महाआरती के बाद लौटते समय इन लोगों ने मुसलमानों के घर पर हमला किया था। इस तरह मुसलमानों का गुस्सा और मजबूरी बेतहाशा बढ़ गई थी।

आधी रात के बाद हुई इस आगजनी की खबर पूरे शहर में फैल गई थी। हालांकि अखबारों ने इसकी कोई खबर नहीं छापी थी। शिवसेना ने जगह-जगह अपने ब्लैक बोर्ड टांग रखे हैं। इन पर वे अपने समाचार लिख देते हैं। हमलावरों का पता लगने से पहले ही शिवसेना ने समाचार प्रसारित कर दिया था कि मुसलमानों ने असहाय हिन्दू परिवार पर हमला कर के उन्हें जला दिया है।

9 जनवरी को शुरू हुए दंगों का अन्त 12 जनवरी को हुआ था। इससे एक दिन पहले बाल ठाकरे ने शिवसेना के मुख्यपत्र 'सामना' में लिखा था कि अब हमलों को रोका जा सकता है। कटुरपंथियों को पाठ पढ़ा दिया गया है। मुसलमानों के घरों, फैक्टरियों, दफ्तरों, दुकानों को लक्षित करके उन्हें ठिकाने लगा दिया गया है। युवकों के दल ऐसे क्षेत्रों में जाते जहाँ मुसलमानों की कम आबादी थी। वे बड़े नियोजित ढांग से उन पर हमला करते। वह उनकी दुकानों का सामान बाहर निकाल कर लूटपाट करते। जो सामान पसन्द आ जाए उसे एक ओर रख कर बाकी चीजों को

आग लगा देते। एक बेहद दिल दहला देने वाली बारदात डोंगरी की दरगाह चाल में घटी थी। इसमें मध्यवर्गीय परिवार रहते थे। उस चाल के हर एक कमरे को लूट पाट के बाद जला दिया गया था।

इन दो दिन में घटी घटनाओं ने सो रही राज्य सरकार को राज्य रिजर्व पुलिस और सेना को बुलाने पर मजबूर किया था। 8 जनवरी को पुलिस कमीशनर एस.के.बापट पर बम फेंका गया था। वे बाल-बाल बच गए। उसी दिन केंद्रीय रक्षा मंत्री शरद पवार राज्य में स्थिति का जायजा लेने मुंबई पहुंच गए थे। जैसा कि पहले कहा गया पवार के आने से लकवाग्रस्त राज्य सरकार और भी ज्यादा निष्क्रिय हो गई। मुख्य मंत्री सुधाकर राव नाईक से न सिर्फ शहर के नागरिक असंतुष्ट थे उनके अपने दल के लोग भी उनसे नाखुश थे। दोनों अपनी राजनीतिक चाल चल रहे थे। शहर वास्तविक रूप से आग की लपटों में घिरा था।

9 जनवरी को आगजनी के सैंकड़ों मामले घटे थे। बन्दरगाह के पास रोड मार्ग पर स्थित विशाल लकड़ी मार्केट को आग के हवाले कर दिया गया था। अस्त्रों और बमों से लैस लोगों के हजूम बारदातों को अंजाम दे रहे थे। पुलिस वहाँ थी जरूर पर कोई कार्रवाई नहीं कर रही थी। बेशक सैनिक गश्त लगा रहे थे पर आदेश का अनुसरण करते हुए कुछ भी कार्रवाई नहीं कर रहे थे। मुंबई शहर लूटपाट कर रहे 3,00,000 लोगों के हवाले हो चुका था। उधर बड़ी संख्या में पुलिसकर्मी, अतिरिक्त पैरा-मिलिट्री और सैनिक इसको रोकने में असमर्थ खड़े थे।

हालांकि 12 जनवरी को मुसलमानों के घरों, संस्थानों पर नियोजित रूप से हमले होने बन्द हो गए थे लेकिन फिर भी छोटे पैमाने पर छुटपुट घटनाएं तीन-चार दिनों तक जारी रही थीं। सबसे भयंकर दुर्घटनाएं एंटाप हिल पर स्थित प्रतीक्षा नगर में हुई थीं। यह संकुल महाराष्ट्र हाऊसिंग बोर्ड ने उन लोगों के लिए बनाया था जिनके मकानों की शहर के पुराने हिस्सों में मरम्मत हो रही थीं। बेहद नियोजित तरीके से युवकों

के दल हर एक मुसलमान के घर में गए थे। उनके सामान, घर को आग के हवाले कर दिया गया था। इन मकानों की निशानदेही इन लोगों ने पहले ही यह कह कर ली थी महाराष्ट्र हाऊसिंग बोर्ड के कर्मचारी हैं। हमले दिन के वक्त तब शुरू हुए थे जब पुरुष लोग घर पर नहीं थे। बच्चे और औरतें भाग कर पुलिस चौकी गए थे। उन्होंने मदद की भीख मांगी थी। दो दिन और रात तक वे एक-दूसरे के साथ सिकुड़े से बैठे रहे थे। खाना-पीना तो दूर कोई उनका हाल पूछने तक नहीं आया था।

अन्ततः एक सैनिक दल आया। जब उन्हें वहाँ से निकाला जा रहा था तब पड़ोसी हिन्दुओं ने अपनी खिड़कियों से इन पर सोड़े की बोतलें फेंकी थीं। आखिर में यह हज कमेटी द्वारा बनाए गए मुसाफिरखाना पहुंचे। वहाँ वे अपने पुरुषों से मिले थे।

रातों-रात स्थापित किए जा चुके अनेक राहत शिविरों में से यह भी एक था। इनमें बेघर हुए हजारों लोगों को पनाह दी गई थी। 26 जनवरी का दिन बेहद तनावपूर्ण रहा था। ध्वजारोहण समारोह को बॉयकाट करने की धमकी दी गई थी। इसलिए यह समारोह हुआ ही नहीं था। सरकार ने बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिए मुंबई उच्च न्यायालय के न्यायाधीश बी.एन.श्रीकृष्णा को नियुक्त करके एक सदस्यीय जांच आयोग बैठा दिया था। उसी दिन बेहरामपाड़ा की झुग्गी-झोपड़ी कॉलोनी में हिंसात्मक गतिविधियां शुरू हो गईं। बेहरामपाड़ा मुंबई में ऐसी बहुत सी कॉलोनियों की ही तरह रेल्वे लाइन के किनारे पर बसी हुई है। हालांकि इस जमीन का मालिक रेल्वे विभाग है पर कोई भी कार्रवाई तब की गई जब बहुत देर हो चुकी थी। आज यह मुसलमान प्रधान लोगों के लिए एक भीड़भाड़ भरा, झोपड़ियों का शहर है। यहाँ लोग छोटे-छोटे, टूटे-फूटे, अस्थायी बसेरों में रहते हैं। ये ढांचे लकड़ी से बने हैं। बेहरामपाड़ा में एक गन्दा मल निर्यास है, जिसकी कभी सफाई नहीं की गई है। इसके एकदम बगल में महाराष्ट्र हाऊसिंग बोर्ड द्वारा निर्मित

एक मध्यवर्गीय संकुल है। इनमें रहने वाले ज्यादातर परिवार हिन्दू हैं। इन दोनों जगहों पर रहने वाले लोगों में कभी शांतिपूर्ण रिश्ता नहीं बन पाया है। बेहरामपाड़ा की कई औरतें इन मध्यवर्गीयों परिवारों के घरों में काम करती हैं। बहुत अच्छे समय में भी इनके रिश्तों में सहनशीलता न के बराबर थी। 1 फरवरी को हाऊसिंग बोर्ड कॉलोनी के नजदीक वाली झुग्गियों को आग लगा दी गई थी। इन झोपड़ियों में रहने वाले लोगों ने दावा किया था कि इन्होंने सड़क पार कॉलोनी के घरों की छतों से लोगों को बम फेंकते हुए अपनी आँखों से देखा था। दूसरी ओर हाऊसिंग कॉलोनियों के लोगों ने गोलियों के निशान दिखाते हुए दावा किया था कि गड़बड़ तब शुरू हुई जब बेहरामपाड़ा से गोलीबारी की गई। इन घटनाओं ने, बेशक किसी तरह की सुलह - सफाई की गुंजाइश नहीं छोड़ी थी। दोनों समुदाय अपनी-अपनी बात पर अड़े थे।

बेहरामपाड़ा विस्फोट के साथ दूसरे दौर का खात्मा हो गया था। उसके बाद कुछ छुट-पुट वारदातें हुई थीं। दूसरे दौर में अदा की गई कीमत पहले दौर से बहुत ज्यादा थी। दिसंबर में 227 मौतों की पुष्टि हुई थी। जनवरी में इससे दुगने 537 लोग मारे गए थे। समाचार पत्रों के अनुसार दंगों से प्रभावित 60-67 प्रतिशत लोग मुसलमान थे। मुंबई की पूरी जनसंख्या के 13 प्रतिशत मुसलमान हैं।

प्रभाव

दंगों के दूसरे दौर के बाद बड़े पैमाने पर लोग बेघर हुए थे। बड़ी संख्या में हिन्दू और मुसलमान अपने घर छोड़कर स्कूलों, कॉलेजों, मन्दिरों और रेल्वे स्टेशनों में रहने चले गए थे। 10-15 जनवरी के दौरान 1,50,000 लोग अपने परिवारों सहित मुंबई से चले गए थे। इनमें से ज्यादातर उत्तर भारत से थे। उनका विचार था कि वे अपने गांव में सुरक्षित रहेंगे।

दंगों के पहले दौर में सेन्ट्रल और दक्षिण मुंबई में ही दुर्घटनाएँ घटी थीं। यहाँ की जनसंख्या मिली- जुली है।

कहीं - कहीं मुसलमान ज्यादा हैं। झुग्गी-झोपड़ियों में पहले भी दंगे होते रहे हैं। इस बार भी हुए। शहर के बड़े हिस्से पर कोई असर नहीं पड़ा था। ऐसा विशेष रूप से समृद्ध सम्पन्न पश्चिमी हिस्सों में हुआ था। दूसरे दौर में किसी को बख्ता नहीं गया था। इन समृद्ध क्षेत्रों में रहने वाले मुसलमानों पर भी हमले हुए थे। लोगों का एक हजूम आ कर पूछता - क्या बिल्डिंग में कोई मुसलमान रहता है? उनकी मांग होती थी - हमें बताओ उनका कौन सा मकान है? भयभीत लोगों ने अपनी नाम पट्टियां उतार दीं। अतिरिक्त सुरक्षा कर्मी बुलाए गए। बिल्डिंग के गेट पर ताले लगा दिए गए। जिन लोगों ने कभी ऐसा सोचा तक न था उन्होंने नागरिक दल गठित किए। हॉट लाइन के माध्यम से मदद की भी सुविधा दी गई थी। हस्तक्षेप के लिए वे पुलिस या सेना को बुला सकते थे।

शिवसेना की भूमिका

दंगों के दूसरे दौर के कई पक्ष ऐसे हैं जिन पर ध्यान देना जरूरी है। पहले दौर में दंगों का कारण था बाबरी मस्जिद को गिरा दिया जाना। इस पर मुसलमानों और राज्य की अपनी-अपनी प्रतिक्रिया थी। दूसरा दौर सुनियोजित था। इस योजना के पीछे शिवसेना थी। इसकी पुष्टि शिवसेना के प्रवक्ता द्वारा 'सामन' में हर रोज लिखे लेखों से होती है। इसका प्रमाण समाचार पत्रों और सरकारी छानबीन से भी मिलता है।

दूसरे दौर में यह भी पता चला कि जो मध्यवर्गीय हिन्दू अब तक शिवसेना के हथकण्डों से दूर रहते थे उन्होंने भी इस अभियान में अपना योगदान दिया। शिवसेना ने कैसे यह मदद मुहैया करवाई? एक अस्त्र रहा महाआरतियों का आयोजन। मध्यवर्ग को इस घिनौनै काम में शामिल करने के लिए यह एक अच्छा माध्यम रहा। धर्म की बिना पर इन लोगों को सङ्कोचों पर उतार कर उन्हें अपनी धार्मिक विशिष्टता का बोध करवाया गया। हिन्दू उग्रवादी महाआरती के बाद मुसलमानों पर हमले करते। जनवरी में हुए दंगों

को महाआरतियों के बाद घटी घटनाओं से संबंधित पाया गया।

बेशक बड़े जोर-शोर से मांग उठी थी कि महाआरतियों पर प्रतिबन्ध लगाया जाए। पहले से ही परेशान राज्य सरकार के हिम्मत ही नहीं हुई कि वह यह कदम उठाए। भले लाखों मुसलमान मारे जाएं। हिन्दू बहुसंख्यकों को कैसे नाराज किया जा सकता है! भारतीय जनता पार्टी और शिवसेना दोनों जानते थे कि राज्य और केंद्र में कांग्रेस सरकार इस मसले का इस तरह हल नहीं कर सकती। आखिर ऐसा करने पर अगले चुनाव में क्या होगा? राज्य सरकार ने अपनी आँखें मूंद लीं और शिवसेना और भाजपा ने दर्जनों महाआरतियां आयोजित कर लीं।

इस बीच शिवसेना ने बड़े प्रभावशाली तरीके से मुसलमानों द्वारा बदला लिए जाने की अफवाहें हिन्दुओं में फैला दी थीं।

कहा जा रहा था कि जहाज भरकर अस्त्र-शस्त्र तट रेखा पर पहुंच चुके हैं। ट्रकें भरकर हमलावर हिन्दू बहुसंख्यकों पर हमले करने को तैयार हैं। परिणामस्वरूप इन बिल्डिंगों के बाहर पूरी रात सतर्क युवक पहरा देते रहे। वे पूरी रात उन हमलों का इंतजार करते रहे जो कभी किए ही नहीं गए।

मध्यवर्गीय हिन्दुओं की तर्कहीन प्रतिक्रिया से पता चला था कि राजशासन में मुसलमानों के बारे में शकों और पूर्वाग्रहों की चर्चा खुले आम होने लगी थी। इसी के चलते इस व्यवहार को न्यायसंगत भी बताया गया। मुसलमान अल्पसंख्यक थे। वे ऐसी जगहों पर रहते थे जहाँ उनकी संख्या ज्यादा थी। जो कम संख्या में दूसरी जगहों पर रहते थे वे हिन्दुओं पर हमला नहीं कर सकते थे। इन सब बातों के चलते सच्चाई किसी के सामने नहीं आई।

अंगारों को भड़काने का काम शिवसेना द्वारा प्रकाशित 'सामन' और 'दोपहर का सामना' समाचार पत्रों ने बखूबी किया। मराठी और हिन्दी में प्रकाशित इन दोनों अखबारों ने मुसलमानों के बारे में जहर उगला। हर हिन्दू की मौत के समाचार पर शीर्षक रहता 'मुसलमान राष्ट्र विरोधी'। 1993

के दिसंबर माह के आरंभ में लिखे गए सम्पादकीयों में कहा गया - 'सब मस्जिदें अवैध हथियारों की गोदाम बन चुकी हैं' (8 दिसंबर) या फिर 'इस देश के मुहल्लों में जहर और देशद्रोह की नदियां बह रही हैं। इन मुहल्लों में कट्टरपंथी मुसलमान रहते हैं ... इनकी प्रतिबद्धता पाकिस्तान के प्रति है ... 25 करोड़ मुसलमान पाकिस्तान के नौ एटम बमों के बराबर हैं,' जनवरी को पत्र ने लिखा था 'भिंडी बाजार, नल बाजार, डोंगरी और पाइधोनी ये वे क्षेत्र हैं जिन्हें हम छोटा पाकिस्तान मानते हैं और यहाँ के लोगों ने हिन्दुस्तान को नष्ट करने का फैसला कर लिया है। इन सब को मौके पर ही गोली मारकर खत्म कर देना चाहिए, इन अखबारों में मुसलमानों द्वारा हमलों वाली खबरों को इस तरीके से छापा जाता था मानो व सच हैं। हर रोज होने वाली इस बमबारी की खबरें पढ़नेवाले होते थे मध्यवर्गीय मराठी लोग और पुलिस विभाग। इनकी संख्या लगभग 1,00,000 थी।

पुलिस की भूमिका

दंगों के दूसरे दौर में यह भी उजागर हुआ कि किसी वक्त देश की बेहतरीन पुलिस बलों में से एक मानी जाती मुंबई पुलिस किस कदर सांप्रदायिक हो चुकी है। मुंबई उच्च न्यायालय के दो सेवानिवृत्त न्यायाधीश न्यायमूर्ति एच.एम. दाऊद और न्यायमूर्ति सुरेश को दंगों की जांच रिपोर्ट देने के लिए भारतीय लोक मानवाधिकार आयोग ने नियुक्त किया था। उनके अनुसार अधिकांश पुलिसकर्मी बहुसंख्यक समुदाय के समर्थक हैं। उन्होंने कहा था कि हमारे पास प्रमाण हैं कि कई पुलिस थानों में निर्देश है कि पीड़ित 'जय श्रीराम' कह कर अपनी बात करें। ऐसा उन्हें तब भी कहना होगा अगर उनको सिर्फ पीने का पानी ही मांगना हो। रेडियो पर भेजे गए सन्देशों से पता चला है कि मुसलमानों के बारे में बात करते समय पुलिस बेहद अश्लील भाषा का इस्तेमाल कर रही थी। पुलिस ने हर मुमकिन कोशिश की कि उन तक मदद न पहुंच पाए।

इस जांच की रिपोर्ट द पीपल्स बर्डिक्ट (जनता का फैसला) में स्पष्ट बताया गया है कि पीड़ितों ने 22 पुलिस स्टेशनों के 80 पुलिसकर्मियों के नाम बताते हुए शपथ पत्रों पर हस्ताक्षर करके साफ कहा है कि इनका रवैया एकतरफा और पक्षपाती था। इन रिपोर्टों से पता चला कि पुलिसकर्मी दंगाईयों से अपनाया महसूस करते थे। कुछ चश्मदीद गवाहों ने बताया कि दंगे के दौरान पुलिस दूर खड़ी सब कुछ देखती रहती थी। ऐसे भी मौके आए कि पुलिस ने खुद भी लूट-पाट की। यह भी कहा गया कि दंगों के पहले दौर में मुसलमान युवकों ने पुलिस कर्मियों पर हमले किए थे। इसी कारणवश दूसरे दौर में पुलिस ने हिन्दुओं की तरफदारी की थी।

पुनर्श

दंगों के इन दो दौरों को शुक्रवार 12 मार्च, 1993 को हुई क्रमिक बमबारी से हटकर नहीं देखा जा सकता है। उस दिन मुंबई हिल गयी थी। चन्द घण्टों के अन्दर शहर के अलग-अलग हिस्सों में दस शक्तिशाली विस्फोट हुए थे। बेहद शक्तिशाली विस्फोटक आरडीएक्स बहुत से वाहनों में रखे गए थे। यह वाहन शहर के अनेक अनुकूल स्थानों पर रखे गए थे। उनको इस तरह से प्राइम किया गया था कि विस्फोट उस वक्त हो जब सबसे ज्यादा ट्रैफिक होगा। व्यापार के मुख्य केंद्र मुंबई शेयर बाजार, शहर का लघु-मैनहाटन माना जाने वाला नरिमन पाइंट मुख्य रूप से निशाने पर थे।

परिणामस्वरूप 317 लोग मारे गए थे और एक पल के लिए ऐसा लगा था कि शहर एक बार फिर अव्यवस्था का शिकार हो जाएगा। इस बार अन्तर सिर्फ यह था कि शरद पवार ने एक बार फिर महाराष्ट्र के मुख्य मंत्री का पद भार संभाल लिया था। यह उनकी क्षमताओं की परीक्षा थी। 24 घण्टों से कम समय में पवार ने शहर को वापस सामान्य स्थिति में पहुंचा दिया था।

फटे हुए बमों की प्रतिध्वनि लम्बे समय तक सुनाई देती रही। मुसलमानों और हिन्दुओं के बीच की खाई और चौड़ी

हो गई। चारों तरफ नाराजगी, द्रेष फैला था। धमाकों के लिए जिम्मेदार लोगों को जल्दी ही पकड़ लिया गया था। इनमें मुसलमान ज्यादा थे। दंगों को भड़काने का काम करने वालों में शिवसेना के नेता प्रमुख थे। इनको नहीं पकड़ा गया था। बेशक इन बम विस्फोटों ने विरोचक का काम किया पर इससे कोई समस्या हल नहीं हुई। हिन्दुओं-मुसलमानों, मुसलमानों-पुलिस के रिश्तों में कोई सुधार नहीं हुआ था। आसी अविश्वास वैसे का वैसा बना रहा। बेशक, सोना उगलनेवाले शहर में लोग अपने अपने धंधों में लग गए। लेकिन पहले के मुकाबले ज्यादा सावधानी बरतने लगे।

दिसंबर, 1992 और जनवरी-मार्च, 1993 की घटनाओं ने पीछे छोड़ा एक ऐसा शहर जो पूरी तरह से बदल चुका था। शहर की कमजोरी भी उजागर हो गई। वह भी जमाना था जब इसका एक साझा इतिहास था। अपनी ऐसी अर्थव्यवस्था थी जिससे बहुतों का लाभ हुआ है और शहर को एक स्थिरता मिली। दंगों से एक बात तो साफ हो गई। दंगों से यह पता चल गया कि छिपी हुई और प्रत्यक्ष अर्थव्यवस्था और राजनीति में

आया बदलाव कैसे नष्ट हो गया। देखने में जरूर लगा था कि सब कुछ सामान्य हो गया है लेकिन धीरे-धीरे स्पष्ट हो गया कि मुंबई शहर विभाजित हो गया है। ऐसा सिर्फ हिन्दू-मुसलमानों के साथ नहीं हुआ है। ऐसा उनके साथ भी हुआ है जिनको बदली हुई अर्थव्यवस्था से लाभ हो रहा है और ऐसे भी हैं जो अलग-थलग पड़ गए हैं। लाभ पाने वालों की गिनती कम है और वंचित लोगों की ज्यादा। इस कारणवश भविष्य में और भी टकराव हो सकते हैं।

★ (लेखिका ने इस लेख के लिए जिन स्रोतों से जानकारी ली वे हैं - अन्य समाचार पत्रों के अलावा टाइम्स ऑफ इंडिया, मुंबई, इंडियन एक्सप्रेस, मुंबई। उन्होंने अगस्त, 1993 में प्रकाशित भारतीय लोक मानवाधिकार आयोग की रिपोर्ट, पीपल्स वर्डिक्ट (जनता का फैसला), यू.बी.एस.द्वारा 1993 में प्रकाशित दिलीप पाडगावंकर की वेन 'बांबे बर्नैड'। लेखिका ने 'द हिन्दू' समाचार पत्र के लिए स्वयं लिखी रिपोर्टाज का तो उपयोग किया ही है।)

अनुवादक : सरोज वशिष्ठ

